IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

Impact Factor: 6.252

Volume 2, Issue 7, May 2022

''बघेलखण्ड के कलचुरि कालीन मंदिर एवं उनकी मूर्तियों में परिधान व आभूषण की विशिष्टता''

Dr. Sudha Soni[1] and Vandana Soni[2]

Professor, Department of Histroy[1]

Research Scholar, Department of Histroy[2]

Government Girls P. G. College, Rewa, MP, India

भारतीय उपमहाद्वीप में लगभग 1200 वर्षों तक राज्य करने वाला यह एक मात्र राजवंश है, कलचुरि राजवंश की विभिन्न शाखाएँ थी जो इस प्रकार है–

1. महिष्मति के कलचुरि।
2. विदर्भ के कलचुरि।
3. कालंजर के कलचुरि।
4. त्रिपुरी के कलचुरि।
5. सरयू पार के कलचुरि।
6. कर्नाटक के कलचुरि।
7. दक्षिण कौशल के कलचुरि।

बघेलखण्ड की इस धरा पर त्रिपुरी के कलचुरि वंश के शासन के प्रमाण मिलते हैं। त्रिपुरी के राजवंशों की वंशावली राजकुमार शर्मा, ''मध्यप्रदेश के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ'' एवं मिराशी के, ''कलचुरि नरेश एवं उनका काल'' से साभार लिया गया है।

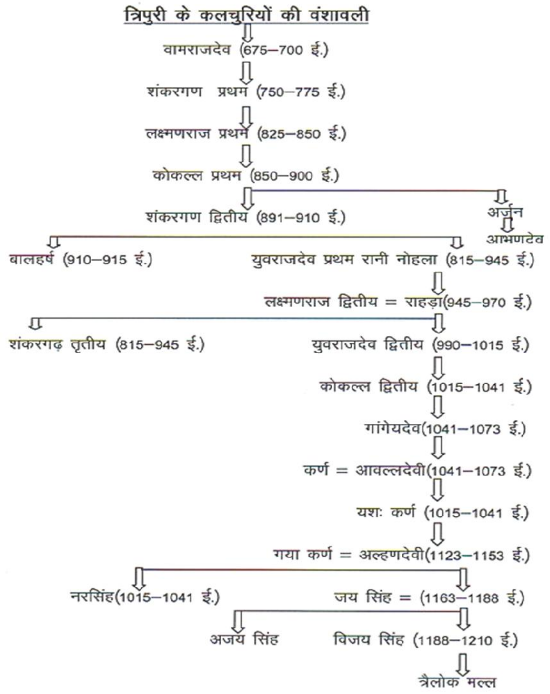

DOI: 10.48175/IJARSCT-4428

कलचुरियों का बघेलखण्ड भूमि से संबंध

मध्यप्रदेश के महाकौशल और बघेलखण्ड क्षेत्र में कलचुरियों के राज्य के प्रमाण मिलते हैं। एक ताम्रलेख गुप्तकाल का सन् 580 का मिला है, जिसमें कलचुरियों का उल्लेख है, उस समय जबलपुर क्षेत्र पर माण्डलिक परिब्राजक राजाओं का शासन था। सन् 875 ई. के निकट विजय राघवगढ़ और उचेहरा में इनके माण्डलिक रहते थे। जो उच्च कल्प के राजा थे। इनके कई लेख जबलपुर से भी प्राप्त हुए हैं। जिनकी तिथियाँ 475 ई. से 554 ई. के बीच मानी जाती है।

इससे यह ज्ञात होता है कि उच्चकल्प के राजा सम्भवतः कलचुरियों के अधीनस्थ थे, और राजधानी उचेहरा थी। कलचुरि नरेशों का इस क्षेत्र पर अधिकार ईशा की दशवीं शताब्दी के प्रारम्भ से पाया जाता है। कृष्ण राज कलचुरि (550 से 575) के शासन काल से इस सत्ता का सूत्रात हुआ।

उनके शासनकाल में दक्षिणी बघेलखण्ड का अधिकांश भू–भाग त्रिपुरी राज्य में शामिल था। कोकल्ल देव (850–890) और उनके पुत्र मुग्धतुंग ने इस क्षेत्र के अधिकांश भू–भाग पर अधिकार कर लिया। इसके बाद पुनः इन नरेशों ने उस पर अधिकार कर लिया।

मंदिर–निर्माण

युवराज देव प्रथम ने गोरगी और उनके पुत्र लक्ष्मण देव प्रथम ने चन्द्रेह (सीधी) में शिव मठों और देवालयों का निर्माण कराया।

बैजनाथ (रीवा–सतना मार्ग रीवा से 8 कि.मी. की दूरी पर स्थित है।) में भी एक शिवमठ की स्थापना की और उसकी व्यवस्था के लिए गाँवों की आमदनी लगा दी थी। उनके पश्चात लक्ष्मण राज द्वितीय ने गोरगी के बृहद मंदिरों का निर्माण कराया।

गांगेय देव (सन् 1015 से 1041) जो एक महान् पराक्रमी शासक थे, इनका एक शिलाखण्ड सिरमौर तहसील में, दूसरा सन् 1020 (कलचुरि सम्वत् 772) का मुकुन्दपुर में प्राप्त हुआ है। इनसे यह जानकारी प्राप्त होती है कि यह प्रदेश गांगेय देव के राज्य का एक भाग था।

गांगेय देव के पुत्र कर्ण देव (सन् 1041–1073 ई.) ने कालिंजर के किले पर पुनः अधिकार कर लिया; जो इस बीच में चन्देल राजा कीर्तिवर्मा के हाथ में चला गया था।

इनका एक ताम्रपत्र सन् 1041 ई. (कलचुरि संवत् 793) का प्राप्त हुआ है, जिससे यह पता चलता है कि अमरकण्टक का कर्ण मंदिर जो तत्कालीन स्थापत्य कला का एक उदाहरण है, कर्ण देव का बनवाया हुआ है।

इतना ही नहीं इनके दिये द्रव्य से इनकी (कर्ण देव की) बहन ने ढुंढेश्वर महादेव (रीवा से 6 कि.मी. पूर्व) का विशाल मंदिर बनवाया था। जो आज भी बहुत अस्त–व्यस्त दशा में है। फिर भी वहाँ के आश्रम की विशालता, रम्यता और महानता का परिचायक है। साढ़े पाँच मील के घेरे में 12 फुट मोटा परकोटा (रेहुँटा) खिचवाकर इन्होंने गोरगी में एक विशाल दुर्ग और अनेक भव्य महलों, मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण कराया।

कर्ण के पश्चात् यशः कर्ण देव, गया कर्ण देव, नर सिंह देव, जय सिंह, विजय सिंह इनके अनुज अजय सिंह व उनके पुत्र त्रैलोक्यमल्ल हुए, जो विक्रमी संवत् की 12वीं और 13वीं शताब्दी में इस क्षेत्र पर शासन करते रहे। इस बीच कालिंजर का किला पुनः इनके हाथ से निकल गया। 14वीं शताब्दी के आते–आते कलचुरि का शासन इस क्षेत्र से उठ गया, पर दक्षिण में रत्नपुर और रायपुर में वह अक्षुण्य रहा।

IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

Impact Factor: 6.252

Volume 2, Issue 7, May 2022

इनके बनवाये मंदिरों और मूर्तियों का प्रमाण अभी भी प्राप्त होता है। जो मंदिर ध्वस्त हो गये किसी, कारण वश, उनकेअवशेषव मूर्तियां संग्रहालयों में स्थापित है जैसे– रीवा संग्रहालय, शहडोल संग्रहालय, जबलपुर संग्रहालय, धुवेला संग्रहालय और राज्य संग्रहालय भोपाल में प्रतिष्ठित है। जिन मूर्तियों के आधार पर मैंने अपने शोध कार्य को पूरा किया उन्हीं मूर्तियों में वस्त्र और आभूषण की बारीकियों को देखकर वर्णन किया।

श्रीतरला (11वीं शदी ई.) शहडोल की मूर्ति धुबेला संग्रहालय छतरपुर

कलचुरि कालीन मूर्तियों में वस्त्र परिधान

कालिदास व बाणभट्ट की रचनाओं में उस समय की स्त्रियों–पुरुषों की वेशभूषा की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। स्त्रियों के तीन प्रमुख वस्त्र थे– उत्तरीय, कंचुक, चण्डातक।

कादम्बरी– उत्तरीय और अन्तरीय (अधिवास) पुरुषों के पहने जाने वाले वस्त्र थे। प्रायः पुरुष वर्ग के मूर्तियों में इसी प्रकार के वस्त्र धारण दिखाया गया है। उत्तरीय धारण करने की अलग–अलग शैली थी। कभी–कभी दोनों कन्धे ढ़के रहते थे, तो कभी दाहिना कन्धा खुला रहता था। जो उच्च वर्ग के लोग भी सिर पर उष्णीव और कमर बंध, धोती धारण करते थें।

उत्तरीय– स्त्री मूर्तियों में उत्तरीय के रूप में प्रयुक्त वस्त्र वक्षस्थल को ढकते हुए कंधे पर से बाहुओं (भुजाओं) के सहारे धारण किया जाता था। प्रतिमाओं में दुपट्टा कंधे से पैरों या पिण्डलियों तक लहराता हुआ दर्शाया गया है, खजुहा (रीवा) की नायिका मूर्ति में इसी प्रकार का दृश्य है। चुनरी को प्रायः पतली पट्टिका के रूप में अंकन हुआ है। किसी–किसी प्रतिमा में दोनों छोर कंधे से होते हुए पीठ पर लटकती हुई हैं।

कंचुक या कुचबंध– स्त्री मूर्तियों में चोली या कुचबंध (कंचुक) से वक्ष स्थल को प्रायः ढका गया है। साहित्य में वर्णित कुचबंध या चोलियाँ यहाँ के स्त्रियों का मुख्य पहनावा था। कलचुरि कालीन मूर्तियों में कपड़े की सकरी पट्टी से निर्मित कुचबंध पहने हैं जिसकी गांठ आगे की तरफ या पीछे की तरफ उत्कीर्ण है। विराटेश्वर मंदिर शहडोल में देखा जा सकता है। पट्टी इतनी सकरी है कि वक्षस्थल पूर्णरूप से ढका नहीं है।

चण्डातक – लहंगा (घाघरा) जैसा वस्त्र था। यह अधेवस्त्र है जिसे चण्डातक (लहंगा) कहा जाता था। इसके साथ स्त्रियाँ लम्बे कंचुक भी पहन लिया करती थी साहित्य में वर्णित लहंगा का सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है। राज्य संग्रहालय भोपाल में यसोदा की मूर्ति में लंहगा प्रदर्शित ळें

कलचुरिकालीन मूर्तियों में आभूषण :–

बघेलखण्ड के कलचुरि कालीन मूर्तियों के आभूषणों की एक लम्बी परम्परा रही है। यहाँ के पुरातत्व, मूर्तिशिल्प, चित्रकला और ऐतिहासिक ग्रंथ, उस समय के आभूषण इतिहास के साक्षी रहे हैं। मैं उसी परम्परा को खोजने का प्रयत्न की हूँ। लोक संस्कृति के लोकमान्य अंग होते हैं, आभूषण, आभूषणों के उपयोग का प्रभाव हमारे तन तथा मन दोनों पर पड़ता है। सौन्दर्य की बाहरी चमक और दमक से लेकर शील की अन्दरुनी गुणवत्ता तक व्यक्ति की वैयक्तिक पसंद से लेकर समाज की सांस्कृतिक चेतना तक आभूषणों का प्रभाव अधिक रहा है। आभूषण पहनने से मनुष्य के शरीर का सौन्दर्य ही नहीं प्रकाशित होता स्वास्थ्य की भी सुरक्षा होती है। उचित समय पर उचित आभूषण पहनने का ज्ञान 'सौन्दर्य–बोध' से प्राप्त होता है। आभूषण का चयन 'शरीर–विज्ञान' के आधार पर भी किया गया है। जिस तरह आभूषण पहनने के वैज्ञानिक कारण है उसी प्रकार ज्योतिष विदों ने भी ग्रह–नक्षत्रों के प्रभाव से आभूषणों के प्रभाव का संबंध स्थापित कर एक नयी दिशा खोल दी है।

प्राचीन समाज के अवशेषों को अपने हृदय में संजोये हुए बघेलखण्ड की गणना आज एक आधुनिक नगरों की श्रेणी में होती है। आभूषण के क्षेत्र में यहाँ की विशिष्टताएँ आज आधुनिक परिवेश में नवीनतम फैशन का रूप धारण करती जा रही है। यहाँ सम्पन्न वर्ग के लोगों में हीरा, जवाहरात, पन्ना, नीलम, मोती युक्त सोना एवं चाँदी के जेवर प्रचलित रहे हैं।

मध्यम वर्ग भी इन्हीं का अनुसरण करता आया है। सामान्य परिवारों में गिलट के आभूषणों का प्रचलन है। यहाँ प्राचीनकाल से लाख के गहने बनाये जाते रहे हैं। लाख के कण्ठी, कठुला, तर्की, कंगन, चूड़ी आदि यहाँ प्रसिद्ध रहे हैं। लाख के आभूषणों का बहुत महत्व रहा है। चाहे वह सम्पन्न परिवार की हो या सामान्य परिवार की सभी धारण करती थीं।

कलचुरि कालीन मूर्तियों के अनुसार आभूषणों को प्राचीन नाम निम्न प्रकार है–

माथे और सिर के आभूषण –

शिखामणि, चूड़ामणि, ललाटिका, मुक्ता जाल, शीर्षपट्ट (धातु की पतली पट्टी सिर में धारण करने की) ये सभी शीर्षभाग में धारण करते थें।

नाक के आभूषण –

बालकृष्ण के बालरूप की शोभा के वर्णन में प्राप्त हुआ है। 'सारे भारत' में स्त्रियों द्वारा नाक छिवाकर 'नकबेसर' 'नथ', नाक के फूली, 'बुलाक' (नाक के दोनों छिद्र के हड्डी में पहनी जाती है) नाक में पहनना न केवल शोभा, अपितु सौभाग्य का सूचक मानते थे। लेकिन अलंकारों के विकास क्रम को देखने से यह जानकारी प्राप्त होती है कि नासिका (नाक) के आभूषण पहनने की परम्परा अति प्राचीन नहीं है।

डॉ. पी.के. गोडे ने पर्याप्त अनुसंधान के बाद से निष्कर्ष दिया है कि आभूषण का प्राचीनतम प्रयोग 10वीं शताब्दी से उपलब्ध होता है।

नाक के आभूषणों का उल्लेख बुन्देलखण्ड के तोमर युगीन ग्रंथों में भी मिलता है, लेकिन चन्देल कालीन और कलचुरि कालीन ग्रंथों में, मूर्तियाँ तथा शिलालेखों में इसका वर्णन, नहीं मिलता।

कान के आभूषण –

स्त्री–पुरुष दोनों ही कर्णाभूषण धारण करते थे। कर्णाभूषण के प्राचीन नाम–कर्णपुर, कनक–कमल, अवतंस, त्रिकण्टक, कर्णोत्पल, उमरु–कुण्डल अथवा ढोलका–कुण्डल, सर्प–कुण्डल, पत्र कुण्डल, रत्न–कुण्डल, शंख–कुण्डल कान के तीन हिससे में पहने जाते थे। कान के तीनों हिस्सों में धारण किया हुआ मूर्तियों में देखा गया है।

गले के आभूषण –

गले का प्रमुख आभूषण था। जिसके विविध प्रकार हैं– एकावली, हारशेखर, हारयष्टि, अद्ढहार (अर्द्धहार), लम्बहार, निर्धोतहार आदि थे। ये मोतियों (मुक्ता) से बनते थे। इसी कारण कालिदास ने हार को मुक्ताहार कहा है। (अश्वघोष–बुधचरित 5–58) में

''कंठसूत्र'', 'हरियष्टि' के अनेक के नाम दिये हैं। ग्रैवेयक, तारहार, तारहार को पुरुष भी धारण करते थे। रीवा वेंकट भवन संग्रहालय में महासस्वती की रखी मूर्ति में तारहार को देखा जा सकता है यह आकार में बड़ी और उत्तम मुक्ता की माला से बनायी जाती थी। निष्क भी पहना जाता था। ऋग्वेद में निष्क नामक आभूषण की चर्चा है। रुक्म गले का हार अग्नि के समान चमकीला है। (ऋक् 10, 782) हंसली (यह ठोस गले का आभूषण था, गोल कंगन की तरह), कौस्तुभमणि, बैजयन्तीमाला, छन्नवीर, रक्षावली, कण्ठमाल और कण्ठी, कटमा आदि नाम से जाना जाता है।

हाँथ के आभूषण –

स्त्री–पुरुष दोनों ही हांथ में आभूषण धारण करते थे। भुजाओं में– बाजूबंद, हिरण्य बाहु, अंगद, केयूर आदि को हाथ की बाजुओं में पहनी जाती थी। कलाई में– कंगन, कंकण, चूड़ियाँ, वलय आदि को कलाई में धारण किया जाता था।
हांथ की अँगुली में–मुद्रिका, अँगूठी, हस्तफूल या हाँथफूल (पाँचों अँगुलियों में धारण करने का आभूषण)।

कमर के आभूषण –

ये आभूषण कमर में पहना जाता था, लेकिन इसकी झालर, घुटनो तक होती थी। कटिसूत्र, मेखला, करधनी, रशना, कांची को कमर में धारण किया जाता था। ये झालर युक्त होती थी।

पैरों के आभूषण –

पायल, कड़े, पैजनिया, उनेठुआ, पायजेब, मंजीर (कड़े के रूप में) आदि नाम है। बिछिया पैर की अँगुलियों में पहनी जाती थी।

आभरण–मंजूषा (पेटी) –

आभूषण रखने की पेटी होती थी। यह पात्र 'समुद्र गक' नाम से भी जाना जाता था।

शासकों और शिल्पियों का उद्देश्य :–

मैंने मूर्तियों की साज–सज्जा को देखा इससे मैंने यह अनुभव किया कि मूर्ति निर्माण केवल धार्मिक आस्थाओं को दर्शाना ही नहीं था, अपितु उस समय के स्थिति को दर्शाना भी था कि सभी वर्ग के लोग कैसी वेशभूषा आदि का उपयोग करते थे। कलाकारों ने अपनी कलाकृतियों में यही दर्शाने की कोशिश की है।

बघेलखण्ड के मंदिर व मूर्तियाँ स्थापत्य कला की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिल्पगत विशिष्ट लक्षणों के कारण मंदिर भारतीय मूर्तिकला में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मंदिर–मित्तियों पर उत्कीर्ण हिन्दू देवी–देवताओं, अप्सराओं अथवा सुर–सुन्दरियों, पशु–पक्षियों और जन–जीवन के विविध विषयों की अनेक मनोहरी मूर्तियाँ हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. मिराशी, डॉ. वासुदेव विष्णु, कलचुरि नरेश और उनका काल।
2. अग्निहोत्री, गुरु रामप्यारे, रीवा राज्य का इतिहास।
3. सिंह, रामकुमार, कलचुरि नरेश और उनके वंशज (विन्ध्य क्षेत्र की पृष्ठभूमि पर)।
4. त्रिपाठी, पं. गया प्रसाद, ग्राम रायपुर कर्चुलियान (रीवा) से प्राप्त एक हस्तलिपि में जो सम्भवतः मासिक पत्रिका के तत्कालीन अंक में प्रकाशित हुआ था। (परिशिष्ट नवम्)।
5. मोती चन्द्र (2007), प्राचीन भारतीय वेशभूषा, प्रयाग।
6. मजूमदार, जी.पी. (1934–35), इण्डियन कल्चर, खण्ड–1
7. जमीला, बृजभूषण (1958), दि कॉस्ट्यूमस एण्ड टेक्स टाईल्स ऑव इण्डिया, बम्बई
8. गांगुली, के.के., नीड आनामेन्ट्स ऑफ एन्सियन्ट इण्डिया यूनिवर्सिटी ।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
IJARSCT
Impact Factor: 6.252
Volume 2, Issue 7, May 2022

9. शर्मा, राजकुमार, मध्यप्रदेश के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ।
10. सर्वे द्वारा स्वयं का अनुभव वन्दना सोनी।